

हिन्दी साहित्य के विकास में भारतीय संस्कृति की अवधारणना

शिखा उमराव ,

शोध छात्रा,

ज्वाला देवी विद्या मन्दिर पी.जी. कॉलेज, कानपुर

साहित्य संस्कृति का वाहक है, साहित्य में संस्कृति की मनोरम झांकी अपने पूर्व वैभव के साथ चित्रित होती है। किसी भी देश या जाति का साहित्य उसके विचारों और भावनाओं के इतिहास का परिचय देता है। मनुष्य के मानसिक विकास के विविध आयामों में संस्कृति अपना विस्तृत रूप धारण करती है, जिसे प्रकाश में लाने का कार्य साहित्य करता है। डॉ० सरनाम सिंह शर्मा ने "साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिम्ब तथा अनागत का प्रदीप माना है। साहित्य जन-मानस की अन्तर्बाह्य प्रतिछबियों का प्रकाशन करने वाला ज्ञान राशि का संचित कोष है। इसीलिए वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक प्रमाणिक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित तो रहते ही हैं, इसके अतिरिक्त साहित्य मनुष्य को उस रागात्मक ऐष्य की स्थिति तक पहुँचाता है और मानव को मानव के रूप में जीने की शिक्षा देता है।

**“जड़ चेतन जग जीव जगत सकल राममय
जानि।**

बंदरु सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।

अर्थात् भारत में न केवल मानव मात्र में बल्कि चेतन, अचेतन, पदार्थ में भी बन्धुत्व के दर्शन होते हैं। जड़ चेतन सभी आत्मरूप हैं। आत्मा का तादात्म्य ईश्वर से है।

सनातन संस्कृति के संवाहक भारतीय ऋषि व महर्षियों ने मानव-मानव में कभी भी वेद नहीं माना तथा सम्पूर्ण मानव को एक परिवार का

अंग मानकर सभी में एक दूसरे के प्रति दया, प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता आदि भावनाओं को बलवती बनाने के लिए उदार चरित्र के निर्माण के लिए बतलाते हैं कि दूसरों का कल्याण करना ही परम धर्म है –

**“परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम
नहिं अधमई।।”**

भारतीय संस्कृति विष्व की समस्त संस्कृतियों से प्राचीन एवं अक्षुण संस्कृति है। संस्कृति वह इकाई है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, नैतिकता, रीति-रिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के द्वारा अर्जित अन्य सभी योग्यताएँ शामिल हैं। भारतीय संस्कृति सनातन संस्कृति है अर्थात्- नित्य, निरन्तर, शाश्वत एवं स्थायी। वैदिक काल से लेकर अद्यावधि तक यह निरन्तर प्रवाहित धारा की भाँति कभी न रुकने वाली परम्परा रही है। “संस्कृति उन समस्त आदर्शों की समाष्टि है जो मनुष्य को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करती है। यह मानवतावादी दृष्टि समस्त जीवन व्यापारों और सामाजिक सम्बन्धों में व्याप्त रहती है।” भारतीय संस्कृति देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि सभी सीमाओं से परे है। भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विष्व के मानव जाति में एकता, प्रेम एवं साहचर्य का भाव भारती रही है। इसकी विरारटा का प्रमाण इसी उद्घोष के साथ प्रत्यक्ष होता है –

“सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।”

जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से निरन्तर विष्व को प्रकाशित करता रहता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति निरन्तर एवं शाश्वत प्रकाश पुंज के रूप में विष्व मानव समाज की अज्ञानरूपी अंधकार के ज्ञानरूपी प्रकाश फैलाने का कार्य करती रहती है।

**“आतम संस्कृतिर्वाव शिल्पानि, एतैर्य जमान
आत्मानं संस्कृतेः”**

अर्थात् संस्कृति वह शक्ति है जो इस उन्नयन कर साधना को सिद्ध करती है। भारत सदियों से ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ के आधार पर अपनी संस्कृति का विकास करता रहा है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व सहयोग, सहिष्णुता, समन्वयवादिता, नारी का महत्व, सेवा, उदारता, त्याग आदि मानवीय गुण प्रमुख मौलिक तत्व हैं। भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों को सदाश्रेष्ठ माना गया है। इसीलिए आचार परमोधर्म, अहिंसा श्रेष्ठतम धर्म, नहि सत्यात् परोधर्म, परोपकार पुण्याय के आदर्श स्थापित हुए। डॉ० मंगलदेव शास्त्र के शब्दों में कहे तो “सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समाप्ति को ही संस्कृति समझना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में अहिंसा को सर्वोपरि धर्म माना गया है। इसके मूल में जीवन की व्यापकता का सिद्धान्त है। कबीर दायस जी ने दया, प्रेम, विष्वबन्धुत्व की भावना पर विशेष जोर दिया और क्षमा, परोपकार, अहिंसा करना ही नैतिक गुणों का ही उपदेश दिया –

“जहा दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।

जहाँ क्रोध तहाँ काल, जहाँ क्षमा तहाँ आप।।

भारत की अनेकता और विविधता मौलिक तथा सनातन है। यहाँ मानव-प्रेम, विष्व बन्धुत्व और विष्व की एकता के मंत्र कण-कण में व्याप्त है। भारत विविध नाम, रूप, राग, द्वेष, स्वार्थ आदि के होते हुए भी तत्त्वतः एक है। मानवीय मूल्यों में प्रेम एक ऐसा तत्व है जो व्यष्टि व समष्टि दोनों का

एक सूत्र में पिरोकर रखता है। सभी सुखी रहें जैसी भावना हिन्दी कविता में दर्शनीय है –

“औरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ।

**अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी
बनाओ।**

इन दिनों मनुष्य जीवन और इसके मूल्यों का अंकन करना भूल गया है। इसीलिए जीवन मूल्यों की उपेक्षा से उपजने वाली समस्याओं से पूरा संसार त्रस्त है। हिंसा, तनाव, लूटमार, आतंकवाद आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो सुलझने के स्थान पर एलझती ही जा रही हैं। चारों ओर मूल्यों का क्षरण हो रहा है। चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या शैक्षिक क्षेत्र हो। राष्ट्र कवि मैथिलीषरण गुप्त गिरते हुए भारतीय मूल्यों से क्षुब्ध और भविष्य के प्रति चिंतित हो कह उठते हैं –

“आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी,

हम क्या थे और क्या हो गये।”

भारतीय संस्कृति की समन्वयादी प्रकृति के विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य के इतिहास में इस काल का नामकरण भले ही भक्तिकाल किया गया हो, परन्तु भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्व, इसकी उदात्त भावनाओं को अभिव्यक्ति इस काल की रचनाओं में हुई है। दादू, कबीर, रैदास, जायसी, नानक, देव, सूर, तुलसी, आदि कवियों की रचनाओं में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की गई। “सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्तनधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं के अनुषांगिक उपलब्धियाँ हैं। इन सबका क्षेत्र विषाल मानव समाज है जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवन यापन करता है। हिन्दी काव्य भाषा और साहित्य परम्परा की जीवंतता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि भक्तिकाल का जन्म हिन्दू-मुस्लिम

संघर्ष के साथ होता है और इतिहास इस संघर्ष का अनेक रूपों में चित्रण करती है पर जिसकी रचना में साम्प्रदायिक दृष्टि का संस्पर्ष भी नहीं होने पाता। “साहित्य को यह प्रकृति वास्तव में भारतीय संस्कृति की प्रकृति है। जिस प्रकार विभिन्न जनगण के परस्पर मेल से भारतीय संस्कृति से समन्वयवादी चरित्र का विकास हुआ और इसमें विभिन्न जनगण की संस्कृति के तत्व अभिन्न रूप से घुल-मिलकर एक हो गये, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य आरम्भ से ही विभिन्न धर्मों और समाज के सभी वर्गों के लोगों के जीवन और रचना की भाषा रही।”

भक्तिकाल रचनात्मकता की दृष्टि से ही नहीं, भारतीय सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भी अन्यतम है। कबीर, जायसी, सरूदास एवं तुलसीदास ने अपने साहित्य में प्रेम की स्थापना की। जाति-पाँति, छुआछूत एवं अमानवीयता के खिलाफ यह एक विराट उद्घोष था। जिसमें कवियों ने जनता से जुड़कर सामाजिक पवित्रता की स्थापना की।

“जाति-पाँति पूछे नही कोई, हरि को भजै तो हरि को होई।।”

भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र ने लिखा है – “एक समग्र राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष की खरी तथा सही पहचान कराने वाली अब तक दो ही ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिन्हें प्रायः सभी नम्रान तथा युगान्तकारी घटनाओं के रूप में रेखांकित किया है। इनमें से एक घटना का संबंध मध्यकाल से है तथा दूसरी का आधुनिक काल से।

युग और व्यवस्थाओं के बदलने के साथ हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरुचियों, हमारी मान्यताएँ, हमारे विचार-विश्वास बदलते हैं और उनके अनुरूप साहित्य संस्कृति का भी रूप सामने आता है जो उनकी गतिशीलता उनकी जीवंतता और उनकी शक्ति का परिचायक है, किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके भीतर जो स्थायी

तत्व हैं वे समाप्त हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति की चेतना और हिन्दी साहित्य का अंत संबंध रीतिकाल में अवष्य क्षीण दिखता है तो इसका तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों है। उत्तरदायित्व विहीन, विलासिता के वातावरण में उपजी श्रृंगार भावना नारी देह में सिमट गई थी। जैसे सब ओर से चोट खाकर किसी ओर रास्ता न पाकर बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोविषेय का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का एकमात्र साधन नारी देह की शोभाओं और चेष्टाओं के अवलोकन कीर्तन तक की सीमाबद्ध हो गया हो।” फिर भी इस काल में चिंतामणि, भूषण मतिराम और बिहारी जैसे समर्थ कवि हुए जिन्होंने संस्कृति चेतना को बनाये रखा।

हिन्दी इतिहास का आधुनिक काल निश्चित रूप से सांस्कृतिक विमर्ष का काल है। भारतेन्दु युग में ही राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना के प्रसार में हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण परिवेष को प्रभावित किया। द्विवेदी युग, छायावाद और छायावादोत्तर – काल में साहित्य और संस्कृति का जनोन्मुखी रूप विकसित हुआ। औपनिवेशिक दासता, स्वाधीनता संग्राम के इस दौर में अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीषरण गुप्त, रामनरेश, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा, महादेवी, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, प्रसाद, दिनकर, मुक्तिबोध, धूमिल, नागार्जून, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि कवियों कथाकारों ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को मनुष्यता के उदात्त मूल्यों से आबद्ध किया। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य धारा के कवियों की राष्ट्रीयता को उभारने वाली रचनाओं ने नया वातावरण निर्मित किया। हिन्दी कविता उक ऐसे सुन्दर समाज की कल्पना करती है जहाँ सभी समान हो सबके हृदय एक हों।

“पुलकित तन हो मुकुलित मन हो, सरस और सक्षम जीवपन हो

अन्न वस्त्र दा/सुखदा, शुभदा, प्राणों से भी
बढ़कर प्यारी हिम किरीटिनी

जलधि पैजनी/बने स्वर्ग ये भूमि प्यारी,
अधर-अधर पर अमिताभ ताज हो

सतत अभ्युदित जन-जन प्रमुदित, सर्व सुखद
सुन्दर समाज हो।।

हिन्दी गद्य को प्रेमचन्द जैसे अनेक रचनाकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों और नारी मनः स्थिति से जोड़ा और समृद्ध किया। आजादी के पश्चात् इससे मोहभंग की स्थिति पतनशील राजनीति और सामाजिक दुरावस्था को नागार्जून, मुक्ति बोध, धूमिल श्री लाल शुक्ल आदि कवि-कथाकारों ने चित्रित किया। वर्तमान में भी रचनाकार अपनी रचनाओं से भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति को सामाजिक प्रवृत्ति मनुष्यता के प्रति नकारात्मक मूल्यों के प्रतिरोध की रही है और यही प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के सभी विधाओं में व्याप्त है। साहित्य सार्वकालिक और सावभौमिक है। इसमें भारतीय शाश्वत मूल्यों का संयोजन है, जो मानव जाति को दया, ममता, सौहार्द, विष्वबन्धुत्व जैसे अनेक मूल्यों से जोड़ने का विकल्प है। हिन्दी साहित्य एक तरफ जहा वर्तमान स्थिति व परिवेश को प्रस्तुत कर उसके दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराता है, वही दूसरी

तरफ मानवीय प्रेम के उदात्त आदर्श को प्रस्तुत कर नयी मानवता की रचना करने की शिक्षा देता है।

“कोटि मनुजों में भरो ध्वनि सभ्यता को,
कि कोटि कण्ठों में बनी ध्वनि मनुष्यता की।”

सन्दर्भ संकेत

1. साहित्य शिक्षा और संस्कृति – आचार्य नरेन्द्र देव – पृ0/33
2. ऐतरेय ब्राह्मण – 6-5-1
3. भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा) डा0 मंगल देव शास्त्री-पृ0-4
4. साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा – डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा-पृ0-19
5. रामचरित मानव – तुलसीदास – 1/7
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नागेन्द्र – पृ0 79
7. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी – पृ0 43-44
8. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य-षिवकुमार मिश्र, पृ0-15